Unit-II

(लघुसिद्धान्तकौमुदी)

अध्याय—4

सन्धि प्रकरण

(क) अच् सन्धिः

इको यणचि 6.1.77

इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये। 'सुधी + उपास्य' इति स्थिते।

व्याख्याः इक् से परे अच् हो तो इक् को यण आदेश हो जाता है, संहिता के विषय में। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, संहिता का अर्थ है वर्णों का अत्यन्त सामीप्य। इस प्रकार संहिता का अर्थ है सन्धि। इक् में वर्ण हैं – इ, उ, ऋ, ल। यण् में वर्ण हैं य्, व्, र्, ल्। इक् से परे यदि अच हो तो स्थानेन्तरतमः(1.1.50) तथा यथासंख्यमनुदेशः समानाम् (1.3.10) सूत्रों के बल पर इ को य्, उ को व्, ऋ को र् तथा ल को ल् आदेश होता है। जैसे सुधी + उपास्यः में ई से परे उ अच् है, इसलिए ई को य् प्राप्त होता है। सूत्र में इकः में ृाष्ठी विभक्ति का प्रयोग है। इसलिए ृाष्ठी स्थानेयोगा ( ) परिभाषा सू.त्र के बल पर इक् के स्थान पर यण् प्राप्त होता है। परन्तु सुघी + उपास्यः में कई इक् हैं। अब यह निर्णय किस प्रकार हो कि कौन से इक् के स्थान पर यण् हो । इसका निर्णय पाणिनि के अगले सूत्र से होगा।

तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य 1.1.66

सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्य वर्णान्तरेणव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम्।

व्याख्याः तस्मिन् से तात्पर्य है सप्तम्यन्त पद। सूत्र का अर्थ हुआ – सप्तम्यन्त पद के द्वारा जो कार्य विधीयमान हो वह सप्तम्यन्त पद से निर्दिष्ट पूर्व वर्ण पर होगा। जैसे इको यणचि सूत्र में अचि पद में सप्तमी विभक्ति है। इसलिए अच् से पूर्व वर्ण पर कार्य होगा। इसलिए धी के ईकार के स्थान पर यण् आदेश होगा। ध्यान रहे ह्रस्व वर्ण पर विधीयमान कार्य उसके सवर्ण दीर्ध या प्लुत पर भी अणुदितसवर्णस्य चाप्रत्ययः सूत्र के बल पर होगा।

स्थानेन्तरतमः 1.1.50

प्रसंगे सति सदशतमः आदेशः स्यात्। 'सुध्य् + उपास्यः' इति प्राप्ते।

व्याख्याः एक स्थानी के स्थान पर जब कई आदेश प्राप्त हो रहे हों तो जो स्थानी के सर्वाधिक निकट है वही आदेश होगा। उच्चारण स्थान का सामीप्य अत्यन्त सामीप्य माना जाता है। इसलिए जिस वर्ण का स्थानी के साथ उच्चारण स्थान का सामीप्य हो वही आदेश होगा। सुधी + उपास्यः में ई को चार वर्णो अर्थात् य् व् र् ल् में से कोई एक आदेश प्राप्त होता है। किस वर्ण का आदेश हो इसका निर्णय उच्चारण स्थान के सामीप्य से होगा। ई का उच्चारण स्थान तालु है। य् का कण्ठतालू , व् का कण्ठोष्ठ , र् का मूर्धा और ल् का दन्त। इनमें य् ही ई के सर्वाधिक निकट है। अतः ई के स्थान पर य् आदेश होगा। इस प्रकार सुध्य् +उपास्यः यह सिथिति हई।

अनचि च 8.4.47

अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि। इति धकारस्य द्वित्वम्।

व्याख्याः अच् से परे यर् को विकल्प से द्वित्व हो परन्तु यर् से परे अच् हो तो द्वित्व नहीं होता। द्वित्व से तात्पर्य है दो हो जाना। विकल्प से तात्पर्य है एक पक्ष में होना तथा दूसरे पक्ष में न होना। इस प्रकार धकार को द्वित्व होने पर सिथिति होगी – सुध्ध्य् + उपास्यः।

झलां जश् झशि 8.4.53

स्पष्टम्। इति पूर्व धकारस्य दकारः।

व्याख्याः झलों से परे यदि झश् हो तो झलों को जश् आदेश हो जाता है। उपर्युक्त उदाहरण में ध् से परे ध् है। ध् झल प्रत्याहार में भी आता है और झश् में भी ,इसलिए पूर्व धकार को दकार आदेश् होगा। इस प्रकार स्थिति होगी – सुद्ध्य् + उपास्यः।

संयोगान्तस्य लोपः 8.2.23

संयोगान्तं यत्पदं तदन्त्यस्य लोपः स्यात्।

व्याख्याः संयोग जिस पद के अन्त में हो उस के अन्तिम वर्ण का लोप हो जाता है। यहाँ सूत्र में अन्तिम वर्ण के लोप का सीधा निर्देश नहीं है। सूत्र के अर्थ के अनुसार पूरे पद का लोप प्राप्त होता है। अन्तिम वर्ण का लोप अग्रिम सूत्र के बल पर प्राप्त होता है।

अलोन्त्यस्य 1.1.52

षष्ठीनिर्दिष्टोन्त्यादेशः स्यात्। इति यलोपे प्राप्ते -

व्याख्याः षष्ठी विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट आदेश अन्तिम वर्ण के स्थान पर होता है। जिस शब्द या वर्ण के स्थान पर कोई अन्य श्शब्द या वर्ण लाया जाए उसे स्थानी कहते हैं और जो शब्द या वर्ण लाया जाए उसे आदेश कहते हैं। यदि स्थानीबोधक पद में सूत्र में ृष्ठी विभक्ति का प्रयोग किया गया है तो उसके स्थान पर होने वाला आदेश षष्ठीनिर्दिष्ट आदेश कहलाता है। उपर्युक्त उदाहरण सुद्ध्य् + उपास्यः में संयोगान्तस्य लोपः सूत्र से पूरे श्शब्दरूप सुद्ध्य् के स्थान पर लोप आदेश प्राप्त होता है। परन्तु सूत्र में संयोगान्तस्य पद में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ है, अतः संयोगान्त पद के स्थान पर होने वाला आदेश षष्ठीनिर्दिष्ट है। इसलिए पूरे संयोगान्त पद का लोप न होकर केवल अन्तिम वर्ण का लोप होगा। इसलिए सद्ध्य् + उपास्यः में सुद्ध्य् के अन्तिम य् का लोप प्राप्त होता है। परन्तु यकार के लोप का अग्रिम वार्तिक द्वारा निषेध हो जाता है।

वा. यणः प्रतिषेधो वाच्यः।

अर्थात् संयोगान्त यण् का लोप नहीं होता है। इस प्रकार व्यंजन और स्वरों के मेल से रूप हुआ सुद्ध्युपास्यः। क्योंकि अनचि च सूत्र से धकार का द्वित्व विकल्प से हुआ था, इसलिए दूसरा वैकल्पिक रूप होगा – सुध्युपास्यः। इसी प्रकार मधु + अरिः = मद्ध्वरिः तथा मध्वरिः, धात + अंशः = धात्त्रंशः तथा धात्रंशः, ल +आकतिः = लाकतिः। इन उदाहरणों में उ के स्थान पर व् , ऋ के स्थान पर र् तथा ल के स्थान पर ल् आदेश हुए हैं।

एचोयवायावः 6.1.78

एचः क्रमाद् अय् , अव् , आय् , आव् एते स्युरचि।

व्याख्याः एच् से परे यदि अच् हो तो एच् के स्थान पर क्रम से अय् , अव् , आय् तथा आव् आदेश होते हैं।

यथासंख्यमनुदेशः समानाम् 1.3.10

समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात्। हरये। विष्णवे। नायकः। पावकः।

व्याख्याः यदि स्थानी और आदेश दोनों की संख्या समान हो तो आदेशः क्रम से होते हैं , अर्थात् प्रथम स्थानी के स्थान पर प्रथम आदेश , द्वितीय के स्थान पर द्वितीय आदि। एच् में चार वर्ण हैं – ए , ओ , ऐ और औ। इनके स्थान पर आदेश भी चार बताए गए हैं – अय् , अव् , आय् , आव्। इसलिए ए के स्थान पर अय् ओ के स्थान पर अव् , ऐ के स्थान पर आय् तथा औ के स्थान पर आव् आदेश होंगे। इनके उदाहरण हैं – हरे + ए = हरये , विष्णो + ए = विष्णवे , नै + अकः = नायकः तथा पौ + अकः = पावकः। इन उदाहरणों में ए के स्थान पर अय् , ओ के स्थान पर अव् , ऐ के स्थान पर आय् तथा औ के स्थान पर आव् आदेश होकर व्यंजन और स्वर के मेल से ये रूप बने हैं।

वान्तो यि प्रत्यये 6.1.79

वकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः। गव्यम्। नव्यम्।

व्याख्याः यदि ओ और औ से परे कोई यकारादि प्रत्यय हो तो ओ को अव् और औ को आव् आदेश हो जाता है। एचोयवायावः सूत्र के द्वारा ओ अव् और औ को आव् आदेश तभी प्राप्त होते हैं जब इनसे परे कोई अच् हो। इस सूत्र के द्वारा यकारादि प्रत्यय परे होने पर भी अव् और आव् का विधान किया गया है। वान्त का अर्थ है वकारान्त अर्थात् अव् और आव्। यि प्रत्यये का अर्थ है यकारादि प्रत्यय परे होने पर। जब किसी अल् को निमित्त मान कर किसी कार्य का विधान किया जाता है तो वह कार्य अल् से प्रारम्भ होने वाले समस्त श्शब्दरूप के परे होने पर किया जाता है – यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे इस परिभाषा के बल पर। उदाहरण – गो + यम् = गव्यम् । यहाँ गोपयसोर्यत् सूत्र से गो श्शब्द से विकार अर्थ में यत् प्रत्यय का विधान किया गया है जो यकारादि है। इसलिए गो के ओ को अव् आदेश हुआ। इसी प्रकार नौ + यम् = नव्यम्। यहाँ भी नौ श्शब्द से परे यत् प्रत्यय हुआ है, इसलिए नौ के औ के स्थान पर आव् आदेश हुआ है। गव्य और नव्य प्रातिपदिकों से प्रथमा के एकवचन में गव्यम् और नव्यम् रूप बने हैं। इस प्रक्रिया को विस्तार से सुबन्त प्रकरण में समझाया जाएगा।

वा. अध्वपरिमाणे च। गव्यूतिः।

व्याख्याः मार्ग को मापने के परिमाण अर्थ में भी गो शब्द से यूतिः शब्द के परे रहने पर ओ को अव् आदेश हो जाता है। जैसे – गव्यूतिः। गव्यूतिः का अर्थ है दो कोस।

अदेङ् गुणः 1.1.2

अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात्।

व्याख्याः अत् और एङ् (ए और ओ) की गुण संज्ञा हो। अत् में अ से परे त् है इसलिए तपरस्तत्कालस्य इस परिभाषा सूत्र के बल पर केवल ह्रस्व अकार का ग्रहण होगा।

तपरस्तत्कालस्य 1.1.70

तः परो यस्मात् स च तात्परश्च उच्चार्यमाणसमकालस्यैव संज्ञा स्यात्।

व्याख्याः जिस स्वर से परे तकार हो या तकार से परे जो स्वर हो वह केवल उसी काल वाले स्वर का ग्रहण करता है जो सूत्र में उच्चारित है। जैसे अत् में अ से परे तकार है , इसलिए केवल ह्रस्व अकार का ही ग्रहण होगा। यदि अ से परे त न होता तो अणुदितसवर्णस्य चाप्रत्ययः सूत्र के बल पर दीर्घ और प्लुत अकार का भी ग्रहण होता।

आद्गुणः 6.1.87

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात्। उपेन्द्रः। गङ्गोदकम्।

व्याख्याः अवर्ण से परे यदि अच् हो तो पूर्व और पर दोनों स्वरों के स्थान पर गुण एकादेश हो जाता है। अवर्ण से ह्रस्व, दीर्घ आदि सभी अकारों का ग्रहण होगा। जैसे उप + इन्द्रः = उपेन्द्रः। गङ्गा + उदकम् = गङ्गोदकम्। इन उदाहरणों में अ से परे इ होने पर दोनों के स्थान पर ए एकादेश हुआ है और आ से परे उ होने पर ओ एकादेश हुआ है। सूत्र में यद्यपि अच् परे होने पर कहा गया है परन्तु वस्तुतः यह नियम केवल इ , उ , ऋ और ऌ अर्थात् इक् परे होने पर ही लागू होता है क्योंकि अ और आ परे होने पर दीर्घ सन्धि होती है तथा एच् परे होने पर वद्धि सन्धि होती

है जिसका विवरण आगे दिया जाएगा। अब प्रश्न उठता है कि अ और इ के मेल होने पर ए गुण एकादेश क्यों हुआ ? अ भी तो गुणसंज्ञक है। इसका कारण यह है कि अ का स्थान कण्ठ है और इ का स्थान तालु। दोनों का मिलकर हुआ कण्ठतालु । ए का उच्चारण स्थान कण्ठतालू है, इसलिए ए एकादेश हुआ। इसी प्रकार अ और उ के स्थान पर कण्ठोष्ठ ओ एकादेश हुआ।

उपदेशेजनुनासिक इत् 1.3.2

उपदेशेनुनासिकोज् इत्संज्ञः स्यात्। प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः।

व्याख्याः उपदेश अवस्था में जो अच् अनुनासिक पढ़े गए हैं उनकी इत् संज्ञा होती है। पाणिनि ने कुछ वर्ण सानुनासिक पढ़े थे जिसका उद्देश्य उन्हें इत्संज्ञक करना था। आजकल पुस्तकों में हमें सानुनासिक पाठ नहीं मिलता है। केवल रूप रचना की प्रक्रिया से ही अनुमान लगाया जाता है कि कौन सा वर्ण सानुनासिक पढ़ा गया है।

उरण् रपरः 1.1.51

लण्सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा। ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम्। तत्स्थाने योण् सो रपरः सन्नेव प्रवर्तते। कष्णर्द्धि। तवल्कारः।

व्याख्याः माहेश्वर सूत्रों में हयवरट् के बाद लण् सूत्र पढ़ा गया है। ल के बाद जो अकार पढ़ा गया है वह इत्संज्ञक है। अतः र् एक प्रत्याहार है जिसमें र् और ल् का ग्रहण होता है। सूत्र का अर्थ है – ऋ के स्थान पर होने वाला अण् आदेश र् परक होता है। ऋ से तात्पर्य ऋ और ल दोनों वर्णो से है। ऋ 18 प्रकार का होता है और ल 12 प्रकार का होता है क्योंकि ल का दीर्ध नहीं होता। इस प्रकार ऋ को 30 प्रकार का माना गया है यह बात पहले बताई जा चुकी है। आद्गुणः सूत्र से अवर्ण से परे इक् होने पर गुण एकादेश बताया गया है। इस प्रकार यदि अ से परे ऋ हो तो दोनों को स्थानेन्तरतमः से अ गुण एकादेश होता है क्योंकि अ और ऋ में अ ही गुणसंज्ञक है। यह अ र् परक होगा। इसी प्रकार अ से परे यदि ल हो तो दोनों के स्थान पर अ गुण एकादेश होगा। यह अ ल् परक होगा। जैसे कष्ण + ऋद्धिः इस स्थिति में अ और ऋ के स्थान पर अर् आदेश होकर कष्णर्द्धि (कष्ण की समद्धि) रूप बना। इसी प्रकार तव + लकारः इस स्थिति में अ और ल का अल् एकादेश होकर तवल्कार (तेरा लकार) रूप बना। वास्तव में तवल्कार कोई व्यवहार में प्रयोग होने वाला शब्द नहीं है। केवल शास्त्र की प्रक्रिया को समझाने के लिए यह उदाहरण दिया गया है। ल का प्रयोग संस्कत साहित्य में अत्यल्प है।

लोपः शाकल्यस्य 8.3.19

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाशि परे।

व्याख्याः यदि पदान्त यकार और वकार से पूर्व अवर्ण (अ या आ) हो और परे अश् प्रत्याहार का कोई वर्णा हो तो यकार और वकार का विकल्प से लोप हो जाता है। यह लोप ाकल्य के मत से होता है पाणिनि के मत से नहीं। अतः यहाँ विकल्प है।

पूर्वत्रासिद्धम् 8.2.1

सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा , त्रिपाद्यामपि पूर्व प्रति परशास्त्रमसिद्धम् । हर इह , हरविह। विष्ण इह, विष्णविह।

व्याख्याः सात अध्याय और आठवें अध्याय के प्रथम पाद के प्रति आठवें अध्याय के अगले तीन पाद असिद्ध हैं। त्रिपादी में भी पूर्व के प्रति परशास्त्र असिद्ध है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में आठ अध्याय हैं। पहले सात अध्याय और आठवें अध्याय के प्रथम पाद में आए हुए सूत्रों का प्रयोग होना हो तो आठवें अध्याय के अन्तिम तीन पादों में आए हुए सूत्रों के द्वारा जो कार्य हुआ है वह असिद्ध माना जाता है। असिद्ध का अर्थ है कि कार्य तो हो जाता है परन्तु वह पूर्व सूत्र के द्वारा होने वाले कार्य के प्रति न हुए के समान ही माना जाता है। आठवें अध्याय के पिछले तीन पाद अपने इस वैशिष्ट्य के कारण पथक् महत्व रखते हैं इसलिए ये त्रिपादी के नाम से प्रसिद्ध हैं। त्रिपादी में भी पूर्व सूत्र के प्रति पर सूत्र असिद्ध माना जाता है। हरे + इह में एचोयवायावः सूत्र से ए के स्थान पर अय् आदेश होकर स्थिति

हुई – हरय् + इह। यहाँ य् से पूर्व अ है और परे अश् प्रत्याहार का वर्ण इ। अतः लोपः ााकल्यस्य सूत्र से य् का विकल्प से लोप प्राप्त हुआ। तब स्थिति हुई – हर + इह। अब यहाँ आद्‌गुणः सूत्र से अ और इ को गुण एकादेश प्राप्त होता है। परन्तु आद्‌गुणः सूत्र की संख्या है 6.1.87 और लोपः ााकल्यस्य सूत्र की संख्या है 8.3.19 अर्थात् यह सूत्र त्रिपादी का है। इसलिए आद्‌गुणः के प्रति लोपः शाकल्यस्य सूत्र असिद्ध हुआ अर्थात् इस सूत्र के द्वारा जो यकार का लोप हुआ है वह न हुए के समान माना जाएगा। इसलिए आद्‌गुणः सूत्र की प्राप्ति नहीं होगी और अ और इ के स्थान पर गुण सन्धि नहीं होगी। इसलिए हर इह यही रूप रहेगा। क्योंकि य् का लोप विकल्प से हुआ है इसलिए दूसरा रूप होगा हरयिह। इसीप्रकार विष्ण इह और विष्णविह।

वद्धिरादैच् 1.1.1

आदैच् वद्धिसंज्ञः स्यात्।

व्याख्याः आकार और ऐच् प्रत्याहार के वर्ण अर्थात् ऐ और औ की वद्धि संज्ञा होती है। आ को तपर किया गया है इसलिए तपरस्तत्कालस्य सूत्र के बल पर केवल आ का ही ग्रहण होगा उसके सवर्णों का नहीं।

वद्धिरेचि 6.1.88

आदेचि परे वद्धिरेकादेशः स्यात्। गुणापवादः। कष्णैकत्वम्। गङ्गौघः। देवैश्वर्यम्। कष्णौत्कण्ठ्यम्।

व्याख्याः अवर्ण से परे यदि एच् प्रत्याहार का कोई वर्ण हो तो दोनों के स्थान पर वद्धि एकादेश होता है। आद्‌गुणः सूत्र के द्वारा अवर्ण से परे अच् होने पर गुण सन्धि का विधान किया गया था। यह सूत्र उसका अपवाद है। अवर्ण से परे एच् होने पर वद्धि होगी न कि गुण। जैसे कष्ण + एकत्वम् = कष्णैकत्वम्। गङ्गा + ओघः = गङ्गौघः (गंगा का प्रवाह)। देव + ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम् (देव का ऐश्वर्य)। कष्ण + औत्कण्ठ्यम् = कष्णौत्कण्ठ्यम्।

एत्येधत्यूठ्सु

अवर्णाद एजाद्योरेत्येधत्योरूदि च परे वद्धिरेकादेशः स्यात्।
पररूयमगुणापवादः। उयैति। उपैधते। प्रष्ठौहः। एजाद्योः किम्-
उपेतः-मा भवान् प्रेदिधत्।

व्याख्याः अवर्ण से परे इण् और एध धातु का एजादि रूप तथा ऊठ् परे हो तो पूर्व–पर के स्थान पर वद्धि एकादेश हो जाता है जैसे उप+एति = उपैति, उप+एधते = उपैधते, प्रष्ठ + ऊहः = प्रष्ठौहः। उपैति तथा उपैधते में वद्धि रेचि सूत्र में भी वद्धि हो सकती थी परन्तु यहाँ आगे आने वाले एङि पररूपम् सूत्र से वद्धि का बाध कर पररूप एकादेश प्राप्त था। इसलिए पररूप को बाध कर यहाँ प्रकृत सूत्र से वद्धि का विधन किया गया है। प्रष्ठ + ऊहः मं आदगुणः से गुण प्राप्त था जिसका बाध करके प्रकृत सूत्र से वद्धि हुई है।

यदि इण धातु और एध् धातु के रूप एजादि न हों तो वद्धि एकदेश नहीं होगा। जैसे– उप + इतः = उपेतः। यहाँ इतः श्शब्द इण् धातु का क्त प्रत्यान्त रूप है परन्तु एजादि नहीं है। अतः वद्धि न होकर आद्‌गुणः सूत्र से गुण हुआ है। इसी प्रकार प्र + इदिधत् = प्रेदिधत्। यहाँ इदिधत् रूप एध् धातु का तो है परन्तु एजादि नहीं है। अतः आद्‌गुणः से गुण होकर प्रेदिधत् रूप बना है।

वा. अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्। अक्षौहिणी सेना

व्याख्याः अक्ष से से परे ऊहिनी श्शब्द हो तो पूर्ण–पर के स्थान में वद्धि एकादेश होता है। जैसे अक्ष + ऊहिनी = अक्षौहिणी। यहाँ सामान्य सूत्र आद्‌गुणः से गुण प्राप्त था परन्तु इस वार्तिक के द्वारा गुण का बाध करके पूर्व पर के स्थान पर वद्धि एकदेश हुआ है। अक्षौहिणी सेना का परिणाम है जिसमें 21870 हाथी, इतने ही रथ, 65610 घोड़े तथा 109350 पैदल सैनिक होते हैं। अक्षौहिणी में नकार को णकार पूर्वपदात् संज्ञायामगः सूत्र से हुआ है।

वा. प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु। प्रौहः। प्रौढः। प्रौढिः। प्रैषः। प्रैष्यः।

व्याख्याः प्र उपसर्ग से परे यदि ऊह, ऊढ, ऊढि, एष और एष्य हों तो तो पूर्व पर के स्थान पर वद्धि एकादेश होता है। जैसे

प्र	+	ऊहः	=	प्रौहः (विशेष तर्क),
प्र	+	ऊढः	=	प्रौढः (बड़ी आयु वाला),

प्र	+	ऊढिः	=	प्रौढिः (प्रौढता),
प्र	+	एषः	=	प्रैषः (प्रेरणा),
प्र	+	एष्यः	=	प्रैष्यः (सेवक)।

इन स्थानों में गुण का बाध करके वद्धि एकादेश हुआ है।

वा. ऋते च ततीया समासे। सुखेन ऋतः सुखार्तः । ततीयेति किम्- परमर्तः।

व्याख्याः ततीया समास में अवर्ण से परे ऋत शशब्द हो तो पूर्व पर के स्थान में वद्धि एकादेश होता है। जैसे सुख+ऋतः = सुखार्तः (सुखेन ऋतः अर्थात् सुख से प्राप्त किया गया)। यहाँ ततीया तत्पुरूष समास है। अतः वद्धि एकादेश हुआ। यदि ततीया समास न हो तो गुण सन्धि होगी। जैसे– परम+ऋतः परमर्तः (परमं ऋतः अर्थात् परम स्थान को प्राप्त हुआ अर्थात् मुक्त) यहाँ ततीया तत्पुरूष समास न होकर द्वितीया तत्पुरूष समास है। अतः वद्धि एकादेश न हाकर गुण एकादेश हुआ है।

वा. वत्सतर कम्बल वसनार्ण दशानामणे। प्रार्णम्। वत्सरार्णमित्यादि।

व्याख्याः प्र, वत्सतर, कम्बल, ऋण और दश शशब्दों से परे ऋण शशब्द हो तो वद्धि, एकादेश होता है।

जैसे– प्र+ऋणम् = प्रार्णम् (कर्ज)।

वत्सर + ऋणम् वत्सरार्णम् (बछड़े के लिए लिया हुआ ऋण)।

वसन + ऋणम् = वसनार्णम् (कपड़े के लिए ऋण)।

दश + ऋणम् = दशार्णम् (एक देश का नाम)

ऋण + ऋणम् = ऋणार्णम् (ऋण के लिए ऋण)

उपसर्गः क्रियायोगे। 1.4.59

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः । प्र. परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप–एते प्रादयः।

व्याख्याः प्र आदि शशब्द जब क्रिया के साथ प्रयुक्त होते हैं तो उनकी उपसर्ग संज्ञा होती है।

भूवादयो धातवः 1.3.1

क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः।

व्याख्याः क्रिया के अर्थ में प्रयुक्त होने वाले भू आदि शशब्द धातुसंज्ञक होते हें। भू आदि शशब्द धातुपाठ में पढ़े गए हैं। भू पहला शब्द है इसलिए धातुपाठ में पढ़े गए शशब्द भ्वादि कहलाते हैं। इन शशब्दों के साथ तिङ् आदि प्रत्यय लगाकर क्रियाएं बनती हैं। इन शशब्दों की तभी धातुसंज्ञा होती है जब ये क्रियावाची हों। अन्य अर्थ में इनकी धातुसंज्ञा नहीं होती। जैसे भू शशब्द होने अर्थ में धातुसंज्ञक है परन्तु पथ्वी अर्थ में नहीं।

उपसर्गादति धातौ 6.1.91

अवर्णन्तादुपर्साद् ऋकारादौ धातौ परे वद्धिरेकादेशः स्यात्। प्रार्च्छति।

व्याख्याः अवर्णान्त उपसर्ग से परे यदि ऋकारादि धातु हो तो पूर्व पर के स्थान में वद्धि एकादेश होता है।

जैसे–

प्र + ऋच्छति = प्रार्च्छति (जाता है)। यहाँ अ और ऋण को आर् वद्धि एकादेश हुआ है। इसी प्रकार उप + ऋच्छति = उपार्च्छति (समीप जाता है)।

एङि पररूपम् 6.1.94

आदुपसर्गाद् एङादौ धातौ परे पररूपमेकादेश, स्यात् । प्रेजते। उपोषति।

व्याख्याः अवर्णान्त उपसर्ग से परे यदि एङ् (ए,ओ) से प्रारम्भ होने वाली धातु हो तो पूर्व पर के स्थान में पररूप एकदेश होता है। अर्थात् पूर्व–पर के स्थान में वही रूप हो जाता है जो पर स्वर का है। जैसे, प्र + एजते = प्रेजते (काँपता है) यहाँ अवर्णान्त उपसर्ग से परे एङ् से प्रारम्भ होने वाली धातु है। अतः अ और ए दोनों के स्थान में पररूप अर्थात ए हो गया है। यह वद्धि सूत्र का अपवाद है। इसी प्रकार उप + ओषति = उपोषति (जलाता है) प्र + एषते = प्रेषते आदि।

अचोन्त्यादि टिः 1.1.64

अचां मध्ये योन्त्यः, स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात्।

व्याख्याः किसी श्शब्द के अन्तिम अच् से लेकर आगे आने वाले व्यजनों सहित पूर्ण समुदाय की टि संज्ञा होती है। जैसे सरस् श्शब्द में अन्तिम अच् रेफ–उत्तरवर्ती अकार है। अकार से परे स् व्यजन है। अतः अस् समुदाय की टि संज्ञा हुई। यदि अन्तिम अच् के बाद कोई व्यजन न हो तो अन्तिम अच् की ही टि संज्ञा होती है। जैसे शक श्शब्द में अन्तिम अच् अकार की टि संज्ञा है।

वा. शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्। तच्च टेः। शकन्धुः । कर्कन्धुः । मनीषा। आकृतिगाणेयम्। मार्तण्डः।

व्याख्याः शकन्धु आदि श्शब्दों में टि को पररूप होकर रूप सिद्ध होते हैं। जैसे–

शक + अन्धुः = शकन्धु : (शकों का कुआँ)

यहाँ पर सामान्यतः दीर्घसन्धि प्राप्त थी परन्तु उसको बाध कर शक के अन्तिम अच् अ, जो टि संज्ञक है तथा अन्धुः के अ दोनों को पररूप अकार एकादेश हुआ है। इसी प्रकार कर्क + अन्धुः = कर्कन्धुः। मनस् + ईषा = मनीषा। यहाँ मनस् के टि अस् तथा ई को पररूप ईकार आदेश हुआ है। यह आकृतिगण है। शकन्धु आदि गण में परिगणित श्शब्दों के अतिरिक्त इस प्रकार के अन्य श्शब्दों में भी यही नियम समझना चाहिए। जैसे मार्त+अण्ड = मार्तण्ड। पतत् + अजलिः = पतजलिः। गणपा ठ अष्टाध्यायी से पथक् पाठ है। इसमें कुछ विशेष श्शब्दों के गण (समूह) पठित हैं।

ओमाङोश्च 6.1.95

ओमि आङि चात परे पररूपमेकादेशः स्यात्। शिवायों नमः। शिव + एहि–

व्याख्याः अवर्ण से परे ओम् और आङ हो तो पूर्व पर को परस्पर एकादेश होता है। जैसे शिवाय + ओम् = शिवायोम्।

अन्तादिवच्च 6.1.85

योयमेकादेशः स पूर्वास्यान्तवत् परस्यादिवता्। शिवेहि।

व्याख्याः जो एकादेश होता है वह पूर्व समुदाय के अन्तिम के समान और पर समुदाय के आदि के समान होता है। जैसे शिव + आ + इहि, यहाँ आ आङ का ही अवशिष्ट रूप है क्योंकि ङ् की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा हुई है और तस्यलोपः से उसका लोप हुआ है। आ और इ की गुणसन्धि होकर रूप बना शिव + एहि । अब यहाँ ओमाङोश्च सूत्र की प्रसक्ति नहीं होती क्योंकि अवर्ण से परे आङ् न होकर ए है। परन्तु अन्तादिवच्च सूत्र से एहि में आङ् की संज्ञा भी मानी जाएगी। इसलिए ओमाङोश्च सूत्र की प्राप्ति होकर शिव के अकार और एहि के एकार का पररूप एकादेश प्राप्त होता है। अतः रूप बना शिवेहि। इसी प्रकार प्र + आ + इहि = प्र + एहि = प्रेहि। उप + आ + इहि = उप + एहि = उपेहि आदि रूप बनेंगे।

अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101

अकः सवर्णेचि परे पूर्वपरयोदीर्ध एकादेशः स्यात्। दैत्यादिः। श्रीशः। विष्णूदयः । होतृकारः ।

व्याख्याः अक् प्रत्याहार के वर्ण से परे यदि सवर्ण अक् हो तो पूर्व–पर के स्थान में दीर्घ एकादेश होता है। जैसे दैत्य + अरिः यहाँ अकार से परे सवर्ण अकार है। अतः दोनों के स्थान पर दीर्घ एकादेश होकर दैत्यारिः (दैत्यों का शुत्रु अर्थात विष्णु) रूप बना। इसी प्रकार श्री + ईशः = श्रीशः (लक्ष्मी का स्वामी), विष्णु + उदयः = विष्णूदयः (विष्णु का उदय), होत + ऋकारः = होतृ कारः रूप बने।

एङः पदान्तादति 6.1.109

पदान्तादेङोति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्। हरेव । विष्णोव

व्याख्याः पदान्त एङ् अर्थात ए, ओ से परे यदि ह्रस्व अकार हो तो पूर्व–पर के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश हो जाता है। पूर्वरूप एकादेश का अर्थ है कि जो रूप पूर्व वर्ण का है वही रूप दोनों के स्थान पर हो जाए। जैसे हरे + अव में हरे पद के अन्त में ए है और उससे परे हस्व अकार है। अतः पूर्व–पर के स्थान पर पूर्वरूप एकार आदेश होगा और रूप बनेगा हरेव (हे हरे रक्षा करो)। चिन्ह अवग्रह कहलाता है। अकार के पूर्वरूप हो जाने पर भी स्पष्टता के लिए यह चिन्ह लगाया जाता है। इसी प्रकार विष्णो + अव = विष्णेव (हे विष्णो, रक्षा करो)।

सर्वत्र विभाषा गोः 6.1.122

लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः पदान्ते। गो अग्रम्, गोग्रम्। एङन्तस्य किम्-चित्रग्वग्रम्। पदान्तेकिम्-गोः।

व्याख्याः एङन्त गो से परे यदि ह्रस्व अकार हो तो सर्वत्र अर्थात् लोक और वेद में विकल्प से प्रकृतिभाव होता है, यदि वह पद के अन्त में हो। प्रकृतिभाव का अर्थ है जैसा है वैसा ही रहना अथ्रात् सन्धि न होना। जैसे गो + अग्रम् = गो अग्रम्। यहाँ गो पद में ओ पद के अन्त में है। पद की परिभाषा है– सुप्तिडातं पदम्। अर्थात् जिस के अन्त मं सुप् या तिङ् प्रत्यय लगे हों उसकी पद संज्ञा होती है। गो + अग्रम् यह एक समस्त पद है जिसका विग्रह गोः+अग्रम् है। समास में सुपो धातुप्रातिपदिकयोः सूत्र से सुप् का लोप हो जाता है। परन्तु प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् इस सूत्र के बल पर सुप के लोप हो जाने पर भी सुप् का लक्षण विद्यमान रहता है। इसलिए सुप् के लोप हो जाने पर भी श्शब्द की पदसंज्ञा रहती है। अतः गो श्शब्द में ओ पद के अन्त में है, इसलिए प्रकृत सूत्र से विकल्प से प्रकृतिभाव रहेगा और गो अग्रम् रूप ही रहेगा। विकल्प पक्ष में एङः पदान्तादति सूत्र से पूर्वरूप एकदादेश होगा अैर गोग्रम् रूप भी बनेगा।

एङन्त न होने पर प्रकृतिभाव नहीं होगा। जेसे चित्रगु+अग्रम् = चित्रग्वग्रम्। यहाँ चित्रगोः + अग्रम् का समास होकर सुप् का लोप होने पर चित्रगो+अग्रम् यह स्थिति बनी और गोस्त्रियोरूपसर्जनस्य से ह्रस्व होकर चित्रगु+अग्रम् यह स्थिति बनी। यहाँ पद के अन्त में एङ् नहीं है इसलिए प्रकृतिभाव न होकर यण् सन्धि होगी और रूप बनेगा चित्रग्वग्रम्।

अनेकाल् शित सर्वस्य 6.1.122

इति प्राप्ते

व्याख्याः जिस आदेश में एक से अधिक अल् हों अथवा जिसमें शकार की इत्संज्ञा हो वह आदेश सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होता है। यह सूत्र अलोन्त्यस्य का अपवाद है। अलोन्त्यस्य के अनुसार आदेश अन्तिम अल् के स्थान पर बताया गया है। परन्तु आदेश में एक से अधिक अल् हों अथवा वह शित् हो तो आदेश केवल अन्तिम अल् के स्थान पर न होकर सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होता है। जैसे अस्तेर्भूः सूत्र के अनुसार अस् धातु के स्थान पर भू आदेश बताया गया है। भू में दो अल् हैं– भ् तथा ऊ। इसलिए यह अनेकाल् है। यह आदेश केवल स् के स्थान पर न होकर सम्पूर्ण स्थानी अस् के स्थान पर होता है। इसी प्रकार अष्टाभ्य औश् सूत्र से अष्टन् श्शब्द से परे जस् के स्थान पर औश आदेश होता है। औश् क्योंकि शित है, इसलिए यह आदेश सम्पूर्ण जस् के स्थान पर होता है।

ङिच्च 1.1.53

ङिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात्।

व्याख्याः यदि आदेश ङित् हो तो अनेकाल् होने पर भी अन्तिम अल् के स्थान पर होता है।

अवङ् स्फोटायनस्य 6.1.123

पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ् वाडचि। गवाग्रम्, गोग्रम्। पदान्ते किम् गवि।

व्याख्याः एङन्त गो पद के स्थान पर विकल्प से अवङ् आदेश होता है। अवङ् क्योंकि ङित् है इसलिए ङिच्च सूत्र से अन्तिम अल् गो के स्थान पर होता है अन्यथा अनेकाल् होने के कारण सम्पूर्ण गो के स्थान पर प्राप्त था जैसे गो+ अग्रम् = गव + अग्रम् = गवाग्रम्। अवङ् स्फोटायन के मत से हैं, पाणिनि के मत से नहीं, इसलिए यहाँ विकल्प है। विकल्प पक्ष में गो+अग्रम् = गो अग्रम् (प्रकृतिभाव), गोग्रम् (एङः पदान्तादति)।

इन्द्रे च 6.1.124

गोरवङ् स्यादिन्द्रे।

व्याख्याः इन्द्र श्शब्द परे होने पर गो को अवङ् आदेश होता है। इसलिए गो+इन्द्रः = गव+इन्द्र = गवेन्द्रः (आद्गुणः से गुण)।

दूराद् धूते च 8.2.84

दूरात् संबोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा।

व्याख्याः दूर से सम्बोधन करके बुलाने के अर्थ में प्रयुक्त वाक्य के टि को विकल्प से प्लुत हो जाता है। जब किसी को दूर से पुकारा जाता है तो वाक्य का टि अर्थात् अन्तिम अच् को प्लुत हो जाता है। जैसे आगच्छ राम3।

प्लुतप्रगह्या अचि नित्यम् 6.1.125

एते अचि प्रकृत्या स्युः। आगच्छ कृष्ण 3 अत्र गौश्चरित।

व्याख्याः प्लुत और प्रगह्य संज्ञक से परे यदि अच् हो तो प्रकृति भाव रहता है अर्थात् सन्धि नहीं होती। जैसे आगच्छ कृष्ण3 अत्र औष्चरति। यहाँ दो वाक्य हैं। पूर्व वाक्य में दूर से बुलाया गया है, अतः कृष्ण के अन्तिम अकार को प्लुत हुआ हे। इसके पश्चात् दूसरे वाक्य का अकार आया है। अतः अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ सन्धि प्राप्त होती है। परन्तु क्योंकि प्लुत को प्रकृतिभाव रहता है, इसलिए कृष्ण3 और अत्र में सन्धि नहीं हई। प्रगह्य संज्ञा अगले सूत्रों में बताई जाएगी।

ईदूदेद् द्विवचनं प्रगह्यम् 1.1.11

ईदूदेदन्तं द्विक्चनं प्रगह्यसंज्ञं स्यात्। हरी ऐतौ। विष्णू इमौ। गंगे अमू।

व्याख्याः द्विवचन श्शब्द यदि ईकारान्त हो, ऊकरान्त हो अथवा एकारान्त हो तो उसकी प्रगह्य संज्ञा होती है। प्रगह्य संज्ञा का फल प्रकृतिभाव रहना है। जैसे हरी+एतौ = हरी एतौ। यहाँ हरी श्शब्द द्विवचन है और ईकारान्त है, इसलिए प्रगह्य एंज्ञा हुई और प्रकृतिभाव हुआ। इसी प्रकार विष्णु इमौ, गंगे अमू। यहाँ विष्णू श्शब्द द्विवचन है और उकारान्त है, गंगे श्शब्द द्विवचन है और एकारान्त है अतः इनकी प्रगह्य संज्ञा हुई और फलस्वरूप प्रकृतिभाव हुआ।

अदसो मात् 1.1.12

अस्मात् परावीदूतौ प्रगह्यौ स्तः। अमी ईशाः रामकृष्णावमू आसाते। मात्किम् –अमुकेत्र।

व्याख्याः अदस् श्शब्द के मकार से परे ईकार, ऊकार और एकार की प्रगह्य संज्ञा होती है। जैसे अभी + ईशाः। यहाँ अमी श्शब्द अदस् प्रतिपादिक का प्रथमा बहुवचन का रूप है। म से परे ई होने के कारण ई को प्रगह्य संज्ञा हुई। प्रगह्य संज्ञा प्रकृतिभाव से रहती है। इसलिए अभी + ईशा में दीर्घ सन्धि नहीं हुई और अभी ईशाः रूप ही रहा। इसी प्रकार अमू+आसाते में अमू पद प्रथमा द्विवचन का रूप है। म् से परे ऊकार की प्रगह्य संज्ञा हुई। इसलिए प्रकृतिभाव होकर

अमू आसाते रूप रहा। अद् श्शब्द के म् से परे एकारान्त रूप नहीं बनता, अतः ईदूदेद् द्विवचनं प्रगह्यम् से एकार की अनुवत्ति होने पर भी कोई उदाहरण नहीं दिया जा सकता। अदस् श्शब्द के म् से परे ई, ऊ और ए से पहले किसी अन्य वर्ण का व्यवधान होतो प्रगह्य संज्ञा नहीं होती जैसे अमुकेत्र। यहाँ अमुके रूप भी अदस् श्शब्द का ही है परन्तु म् और ए के मध्य उकार और ककार का व्यवधान है, इसलिए एकार की प्रगह्य संज्ञा नहीं होगी और एङः पदान्तादति से पूर्वरूप सन्धि होकर अभुकेत्र रूप बनेगा।

चादयोसत्वे 1.1.53

अद्रव्यार्थाश्चादयो निपाताः स्युः।

व्याख्याः च आदि श्शब्द जब द्रव्य अर्थ में प्रयुक्त न हों तो उनकी निपात संज्ञा होती है। च आदि श्शब्द अव्यय होते हैं। जब ये द्रव्यवाची न हों तो इन्हें निपात कहते हैं।

प्रादयः 1.4.58

एतेपि तथा।

व्याख्याः प्र. आदि श्शब्द भी निपात संज्ञक होते हैं। प्र आदि श्शब्द उपसर्गाः क्रियायोगे सूत्र की व्याख्या में गिनाए जा चुके हें।

निपात एकाजनाङ् 1.1.14

एकोज् निपात आङ्वर्जः प्रगह्य स्यात्। इ इन्द्रः। उ उमेशः । वाक्य स्मरणयोरङित् - आ एवं नु मन्यसे, आ एवं किल तत्। अन्यत्र ङित्- ईषदुष्णम् ओष्णम्।

व्याख्याः जो निपात केवल एक अच् मात्र हो उसकी प्रगह्य संज्ञा होती है, आङ् को छोड़कर। जैसे इ इन्द्रः, उ उमेशः। यहाँ इ और उ निपात हैं और इनका स्वरूप केवल एक अच् मात्र है, इसलिए इनकी प्रगह्य संज्ञा हुई और दीर्घ सन्धि नहीं हुई। परन्तु आङ् निपात की प्रगह्य संज्ञा नहीं होती। आङ् का आ शेष होता है। जैसे आ+उष्णम् = ओष्णम् (थोड़ा सा गर्म)। आङ् का आ यद्यपि एक अच् मात्र है तथापि प्रगह्य संज्ञक न होने के कारण उसका प्रकृति भाव नहीं हुआ और गुण सन्धि हो गई। आ का अङित् रूप भी भाषा में प्रचलित रहा है। विशेष रूप से वाक्य में और स्मरण अर्थ में। उस अवस्था में आ की प्रगह्य संज्ञा होती है, जैसे आ एवं नु मन्यसे (अरे क्या तुम ऐसा मानते हो); आ एवं किल तत् (हाँ निश्चित रूप से ऐसा ही है)।

ओत् 1.1.15

ओदन्तो निपातः प्रगह्यः । अहो ईशाः!

व्याख्याः ओकारान्त निपात की प्रगह्य संज्ञा होती है। जैसे अहो ईशाः यहाँ अहो निपात ओकारान्त है, इसलिए प्रगह्य संज्ञा हुई और प्रकृतिभाव हुआ।

सम्बुद्धौ शाकल्येतावनार्षे 1.1.16

सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगह्योवैदिके इतौ परे। विष्णो इति, विष्ण इति, विष्णविति।

व्याख्याः जो ओकार प्रथमा एक वचन के सम्बोधन पद के अन्त में हो और उससे परे इति हो तो उसकी विकल्प से प्रगह्य संज्ञा होती है, अवैदिक अर्थात् लौकिक सहित्य में। प्रथमा एक वचन के सम्बोधन रूप को सम्बुद्धि कहते हैं। जैसे विष्णो इति। यहाँ विष्णो पद एक वचन सम्बोधन का रूप है और इससे परे इति श्शब्द का लौकिक भाषा में प्रयोग हुआ है। अतः ओकार की विकल्प से प्रगह्य संज्ञा होगी। प्रगह्य पक्ष में प्रकृतिभाव होकर विष्णो इति रूप ही रहेगा। अप्रगह्य पक्ष में एचोयवायवः सूत्र से सन्धि होकर रूप बनेगा विष्णव् + इति = विष्णविति। लोपः शाकल्यस्य से व् का विकल्प से लोप होकर रूप बनेगा विष्ण इति। यह नियम वेद में लागू नहीं होता।

मय उञो वो वा 8.3.33

मयः परस्य उञो वो वा अचि। किम्वुक्तम्, किमु उक्तम्।

व्याख्याः मय् से परे उञ् को विकल्प से व् आदेश हो जाता है। जैसे किमु+उक्तम् = किम्वुक्तम्। यहाँ किम् से परे उञ् अर्थात् उ निपात है। निपात एकाचानाङ् से उ की नित्य प्रगह्य संज्ञा प्राप्त थी। परन्तु इस सूत्र के द्वारा उ को व् आदेश बताया गया है, अतः किम्वुक्तम् रूप बना। प्रगह्य पक्ष में किमु उक्तम् रूप ही रहेगा।

इकोसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च 6.1.127

पदान्ता इको ह्रस्वा वा स्युरसवर्णेचि। ह्रस्वविधानसामर्ध्या स्वरसन्धिः। चक्रि अत्र, चक्रच। पदान्ता इति किम्-गौर्यो।

व्याख्याः पदान्त इक् से र्यो रे यदि असवर्ण अच् हो तो इक् को विकल्प से ह्रस्व आदेश हो जाता है। जैसे चक्री + अत्र = चक्रि अत्र। यहाँ चक्री में ई पदान्त में है और उससे परे असवर्ण अच् अ है। अतः शाकल्य के मतानुसार ई को ह्रस्व इकार हो गया और सन्धि नहीं हुई। पाणिनि के मतानुसार यहाँ यण् सन्धि होकर चक्रचा रूप बनेगा। सूत्र में ह्रस्व का विधान किया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि हस्व होने के पश्चात् स्वर सन्धि नहीं होगी क्योंकि स्वर सन्धि होने पर चक्रच रूप ही बनता जो दीर्घ ईकार से भी बनता है। अतः यह सूत्र निरर्थक हो जाता।

यह नियम तभी लागू हाता है जब इक् पद के अन्त में हो पद के मध्य में यह नियम लागू नहीं होता जैसे गौरी + औ = गौर्यो। यह गौरी श्शब्द का प्रथम द्विवचन का रूप है। पूर्ण पद है गौर्यो न कि गौरी। अतः ई यहाँ पदान्त में नहीं है, अतः हस्व नहीं हुआ।

अचो रहाभ्यां द्वे 8.4.46

अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः। गौर्य्यो।

व्याख्याः अच् से परे रेफ या हकार हों और उनसे परे यर् हो तो यर् को विकल्प से द्वित्व हो जाता है। जैसे गौरी–औ। यहाँ पहले इको यणचि सूत्र से ई को य् आदेश हुआ। तब स्थिति हुई गौर् य् + औ। यहाँ अच् से परे रेफ है और उससे परे यकार है जो यर् प्रत्याहार का वर्ण है। इसलिए यकार को विकल्प से द्वित्व होगा और रूप बनेगा गौर्य्यो। द्वित्व के अभाव पक्ष में रूप बनेगा गौर्यो।

ऋत्यकः 6.1.128

ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद् वा। ब्रह्म ऋषि, ब्रह्मर्षि। पदान्ताः किम् - आर्च्छत्। इति अच् सन्धि

व्याख्याः पद के अन्त में आने वाले अक् को विकल्प से हस्व हो जाता है यदि परे ह्रस्व ऋत (ऋत्) हो जैसे ब्रह्मा + ऋषि = ब्रह्म ऋषि। ह्रस्व होने के बाद सन्धि नहीं होती है। विकल्प पक्ष में आद्गुणः से गुण होकर ब्रह्मर्षि रूप बनेगा। जब अक् पद के अन्त में न हो तो सामान्य नियमों के अनुसार सन्धि होगी। जैसे आ+ऋच्छत् आर्च्छत्। यह एक पद है, अतः आ पद के अन्त में नहीं है। इसलिए आ को हस्व नहीं होगा। आटश्च सूत्र से वद्धि होकर आर्च्छत् रूप बनेगा।

(यहाँ अच् सन्धि समाप्त हुई।)

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. निम्नलिखित सूत्रों की व्याख्या कीजिए–

   इको यणचि, तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य, स्थानेन्तरतमः, अनचि च, झलां जश् झशि, एचोयवायावः अदेङ् गुणः, तपरस्तत्कालस्य, आद् गुणः, पूर्वात्रासिद्धम्, वद्धिरोचि, एङि पररूपम्, अकः सवर्णे दीर्घः एङः पदान्तादति, प्लुतप्रगह्या अथिच नित्यम्, अचो रहाभ्यां द्वे।

2. निम्नलिखित सन्धि करने वाले प्रमुख सूत्र बताइए–

    यण् सन्धि, गुणसन्धि, वद्धि सन्धि, सवर्ण दीर्घ सन्धि, अयादि सन्धि, पूर्वरूप सन्धि, पररूप सन्धि, प्रकृतिभाव सन्धि।

3. निम्नलिखित संज्ञा करने वाले प्रमुख सूत्र बताइए–

    गुण संज्ञा, वद्धि संज्ञा, उपसर्ग संज्ञा, धातु संज्ञा टि संज्ञा, प्रगह्य संज्ञा।

4. निम्नलिखित श्शब्दों की प्रमुख सूत्र बताकर सिद्धि कीजिए–

    सुद्ध्युपास्यः, हरये, गव्यम्, उपेन्द्रः कृष्णर्द्धिः, गंगौधः, अक्षौहिणी, सुखार्तः प्रेजते, पतजलिः, शिवायों नमः, गो अग्रम्, हरी एतौ, अमी ईशाः, इ इन्द्रः।